P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-II * ISSUE-IV*December-2014
E: ISSN NO.: 2349 – 980X

यङ्लुगन्तप्रक्रिया–विचार

विनोद कुमार झा
प्रोफेसर,
व्याकरण विभाग,
श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी,
वेरावल,गुजरात।

सारांश

यङ्लुगन्तप्रक्रिया का परिचय

यङ्लुगन्तप्रक्रिया में 'क्रियासमभिहार' आदि अर्थ में विहित 'यङ्' प्रत्यय का लुक् होता है। 'यङ्' का लुक् होने से अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यङन्त के 'क्रियासमभिहार' आदि अर्थ यङ्लुगन्त के भी समझने चाहिए। अर्थात् जो अर्थ 'बोभूयते' का है, वहीं अर्थ 'बोभवीति/बोभोति' का भी है। द्वित्वादि यथोचित कार्य करने के पश्चात् सम्पन्न 'यङ्लुगन्त' की "भूवादयो धातवः" सूत्र से 'धातु' संज्ञा करके नई 'यङ्लुगन्त' धातु बनाई जाती है। जैसे– भूय+ङ् बोभू (बार–बार होना या अतिशय होना) आदि। 'यङ्लुगन्त' धातु आत्मनेपद के निमित्त से रहित होने के कारण परस्मैपदी होती है।

मुख्य शब्द : यङ्लुगन्त, क्रियासमभिहार, यङन्त, आत्मनेपद, परस्मैपदी, अन्तरङ्ग, द्वित्व।

प्रस्तावना

'यङ्लुगन्त' प्रकरण का सर्वप्रथम व मुख्य सूत्र– 'यङ्लुगन्त' प्रकरण का सर्वप्रथम व मुख्य सूत्र है– "यङोऽचि च"। यह सूत्र विधि सूत्र है तथा 'यङ्' प्रत्यय का लुक् करने वाला सूत्र है। इस सूत्र में पठित 'यङः' में षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'अचि' में सप्तमी विभक्ति एकवचन और 'च' अव्यय पद है।

"यङोऽचि च" सूत्र से सम्बद्ध कुछ ज्ञातव्य– प्रकृत सूत्र से सम्बद्ध कुछ ज्ञातव्य बातें इस प्रकार है–

सन्धि–विच्छेद

यङोऽचि = यङस्(पद)+अचि ("ससजुषो रुँः"– स<रुँ, "उपदेशेऽजनुनासिक इत्" एवं "तस्य लोपः"– रुँ<र्, "हशि च"– र<उ, "आद्गुणः"– अ+उ+ढ+ओ, "एङः पदान्तादति"– ओ+अ<ओ)।

अनुवृत्ति– ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः– 2/4/58– लुक्, सूत्र में 'च' ग्रहण के कारण बहुलं छन्दसि– 2/4/73– बहुलम्।

वृत्ति– यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्यात्, चकारात्तं विनापि क्वचित्। अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वम्। अभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लँडादयः। "शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम्" इति परस्मैपदम्। "चर्करीतं च" (गणसूत्रम्) इत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्।

अर्थ– 'अ' प्रत्यय परे होने पर 'यङ्' का लुक् होता है। सूत्र में 'च' पद के ग्रहण से 'अच्' प्रत्यय के बिना भी कहीं कहीं 'यङ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

सूत्र से सम्बद्ध और वृत्ति में उपलब्ध कुछ विशेष ज्ञातव्य– सूत्र से सम्बद्ध और वृत्ति में उपलब्ध कुछ विशेष ज्ञातव्य इस प्रकार है– अनैमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वम्। अभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लँडादयः। "शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम इति परस्मैपदम्।

"चर्करीतं च" (गणसूत्रम्) इत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्– अर्थात् 'यङ्' का लुक् (अदर्शन) 'अच्' प्रत्यय परे न रहने की स्थिति में भी होने से यह लुक् अनैमित्तिक (बिना निमित्त वाला) है, अतः अन्तरङ्ग होने से सब कार्यों में प्रथम (पहले) हो जाता है। तदनन्तर प्रत्यय लक्षण से अवशिष्ट प्रकृति भाग के यङन्त हो जाने से द्वित्व कार्य हो जाता है। अभ्यास कार्य होते हैं। धातु संज्ञा होने पर 'लँट्' लकारादि होते हैं। "शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम" सूत्र से परस्मैपद का विधान होता है। "चर्करीतञ्च" गणसूत्र द्वारा यङ्लुगन्त के अदादिगण में पठित होने से 'शप्' का लुक् हो जाता है। विशेष– 1. 'अच्' एक प्रत्यय है जो "अज्विधिः सर्वधातुभ्यः" वार्तिक के अनुसार कर्ता अर्थ में सब धातुओं से किया जाता है। यथा– चयः (चे+अच) चुनने वाला, जयः (जे+अच) जीतने वाला। इस 'अच' प्रत्यय के परे होने पर "यङोऽचि च" सूत्र से 'यङ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। जैसे– 'लोलूय् +अ', 'पोपूय् +अ' आदि उदाहरणों में 'अ' अच् परे रहते, 'य'यङ् का लुक् (अदर्शन), "अचि श्नुधातुभ्रुवांय्वोरियँङुवँङौ" सूत्र से'उवङ्'

आदेश आदि तथा स्वादि–कार्य होकर क्रमशः 'लोलुवः' (बार बार काटने वाला) तथा 'पोपुवः' (बार बार पवित्र करने वाला) बनते हैं।

प्रश्न– यङन्त 'लोलूय' तथा 'पोपूय' धातु से'अच्' प्रत्यय करने के बाद 'लोलूय +अ' तथा 'पोपूय +अ'इस अवस्था में "यङोऽचि च" सूत्र से 'अ' (अच्) प्रत्यय परे रहते 'य' (यङ्) का लुक्, 'लोलू' तथा 'पोपू' की 'अंग' संज्ञा और 'य' (यङ्) की 'आर्धधातुक' संज्ञा होने के पश्चात् 'लोलू+अ' एवं 'पोपू+अ' इस दशा में "अलोऽन्त्यस्य" परिभाषा सूत्र की सहायता से "सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः" सूत्र से आर्धधातुकसंज्ञक प्रत्यय 'अ' (अच्) परे रहते, इगन्त (इक्–'ऊ' अन्त वाले) अंग 'लोलू' तथा 'पोपू' के अन्त्य अल् 'ऊ' को 'ओ' गुण आदेश क्यों नहीं हुआ?

उत्तर– "न धातुलोप आर्धधातुके" सूत्र से धात्वंश 'य' (यङ्) लोपनिमित्तक 'अ' (अच्) आर्धधातुकसंज्ञक प्रत्यय परे रहते गुण का निषेध हो जाता है।

2. इस सूत्र में 'च' अव्यय पद के बल से 'बहुलम्' (बहून् अर्थान् लाति इति बहुलम्) पद का अनुवर्त्तन किया जाता है, अतएव कहीं कहीं 'अच्' प्रत्यय परे होने पर भी 'यङ्' का लुक् नहीं होता है, कहीं कहीं 'अच्' प्रत्यय के बिना भी 'यङ्' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। प्रत्यय के बिना कहीं–2 'यङ्' का लुक् होने से जो लोग प्रत्येक धातु से यङ्लुगन्त धातु बनाते हैं, वे ठीक नहीं करते हैं। यहाँ कहीं–कहीं से तात्पर्य शिष्ट प्रयोग से है।

नोट– यङ्लुगन्त के विषय में वैयाकरणों में मतभेद देखा जाता है। काशिकाकार, उनके अनुयायी तथा श्रीमद्भट्टोजिदीक्षित यङ्लुगन्तों का प्रयोग लोक तथा वेद दोनों में मानते हैं। भागवृत्तिकार एवं नागेशभट्ट आदि वैयाकरण यङ्लुगन्तों का प्रयोग केवल वेद में ही मानते हैं न कि लोक में। नागेशभट्ट के अनुसार "हुश्नुवोः सार्वधातुके" सूत्र के महाभाष्य द्वारा केवल 'बेभिदीति' एवं 'चेच्छिदीति' इन दो रूपों का ही लौकिक प्रयोग हो सकता है, किन्तु श्रीवरदराजाचार्य "यङोऽचि च" सूत्र पर क्वचित् लिखकर यङ्लुगन्तों का क्वचित् प्रयोग स्वीकार करते हैं। क्वचित् से तात्पर्य शिष्ट प्रयोग से है।

प्रथम शंका– जब 'अच्' प्रत्यय परे न हो तो 'यङ्' प्रत्यय का लुक् (अदर्शन) कब करना चाहिए?

समाधान– आचार्य का कहना है कि "अनैमित्तिकोऽयम् अन्तरङ्गत्वाद् आदौ भवति" अर्थात् जो कार्य बिना किसी निमित्त के होता है, वह 'अन्तरङ्ग' कार्य कहलाता है। इससे भिन्न (निमित्तवान्) कार्य 'बहिरङ्ग' कहलाता है। "असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे" परिभाषा से अन्तरङ्ग कार्य करना हो तो बहिरङ्ग कार्य असिद्ध हो जाता है। इस नियम के अनुसार "यङोऽचि च" सूत्र से 'यङ्' का लुक् 'अच्' के अभाव में होने के कारण यङ्लुक् का कोई निमित्त नहीं है, अतः यङ्लुक् कार्य अन्तरङ्ग हुआ, परन्तु द्वित्वादि कार्य एकाच् अनेकाचादि निमित्तों से युक्त होने के कारण बहिरङ्ग है, इसलिए बहिरङ्ग को बाधकर अन्तरङ्ग कार्य 'यङ्' प्रत्यय का लुक् द्वित्वादि कार्यों के पहले होता है।

द्वितीय शंका– यदि 'यङ्' प्रत्यय का लुक् पहले ही हो जाता है, तब 'यङ्' प्रत्यय के अन्त में न होने से यङन्त के अभाव में "सन्यङोः" सूत्र से द्वित्वादि कार्य कैसे हो सकते हैं?

समाधान– "प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्" परिभाषा सूत्र की सहायता से प्रत्यय का लोप हो जाने पर भी प्रत्ययलक्षण (लुप्त प्रत्यय के आश्रित कार्य) होता है, अतः 'यङ्' प्रत्यय का लुक् हो जाने पर भी लुप्त 'यङ्' प्रत्यय को मानकर शेष अंश में यङन्त–सम्बन्धी द्वित्वादि कार्य किये जाते हैं। इससे कोई दोष नहीं आता है।

तृतीय शंका– यहाँ 'लुक्' शब्द से 'यङ्' का अदर्शन हुआ है, तो "न लुमताङ्गस्य" सूत्र से "प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम" परिभाषा सूत्र का निषेध हो जाना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं हुआ, क्यों?

समाधान– यदि अंग कार्य करना होता है, तभी प्रत्ययलक्षण का निषेध होता है, अन्यथा नहीं। "सनाद्यन्ता धातवः" सूत्र से 'यङ्' (य) प्रत्यय परे होने पर केवल अंगसंज्ञक प्रकृति भाग को ही द्वित्व नहीं होता, अपितु प्रत्ययलक्षण के द्वारा सम्पूर्ण यङन्त को द्वित्व होता है, इसलिए यह द्वित्व अंग कार्य नहीं है, अतः प्रत्ययलक्षण परिभाषा का यहाँ निषेध नहीं हुआ है। अतः मूल में कहा गया है कि– ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद् द्वित्वम।

द्वित्वादि कार्य हो जाने के बाद वर्णसम्मेलन किया जाता है। तदनन्तर लकारादि अभीष्ट विधान करने के लिए लकार करने से पहले सम्मिलित वर्णों की धातु संज्ञा की जाती है, इसलिए वृत्तिकार ने वृत्ति में कहा है– 'धातुत्वाल्लँडादयः' अर्थात् धातुसंज्ञा के बाद 'लँट्' लकारादि किये जाते हैं।

यङन्त 'बोभूय' आदि की "सनाद्यन्ता धातवः" सूत्र से की गयी 'धातु' संज्ञा अक्षुण्ण रहती है, अतः 'बोभूय' में 'य' का लुक् हो जाने पर भी "एकदेशविकृतमनन्यवत्" परिभाषा से 'बोभू' भी धातुसंज्ञक ही है, अथवा "चर्करीतञ्च" गणसूत्र से यङ्लुगन्तों का अदादिगण में पाठ होने से "भूवादयो धातवः" सूत्र से भी इनकी 'धातु' संज्ञा हो जाती है।

चतुर्थ शंका– यङ्लुगन्त धातु प्रत्ययलक्षण द्वारा यङन्त होने से ङिदन्त हुआ, इसलिए "अनुदात्तङित आत्मनेपदम" सूत्र से आत्मनेपद होना चाहिए था, परन्तु नहीं हुआ, क्यों?

समाधान– आचार्य ने इस शंका के तीन समाधान बताये हैं–

1. प्रत्ययलक्षण द्वारा यङ्लुगन्त को ङिदन्त नहीं माना जा सकता है, क्योंकि प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम" परिभाषा सूत्र द्वारा लुप्त हुए प्रत्यय को मानकर वहीं कार्य किया जा सकता है, जो केवल उस प्रत्यय के आश्रित हो। यहाँ 'यङ्' प्रत्यय के ङित्व के द्वारा यङ्लुगन्त को ङिदन्त मानना उचित नहीं है, क्योंकि यह ङित्व धर्म केवल प्रत्यय के आश्रित नहीं है। ङित् तो प्रत्यय अथवा अप्रत्यय कोई भी हो सकता है जैसे– शीङ् आदि धातुयें ङित् तथा चित्रङ् आदि प्रातिपदिक ङित् होते हैं, अतः ङित्व धर्म केवल प्रत्यय के आश्रित न होने से प्रत्ययलक्षण परिभाषा यहाँ प्रवृत्त नहीं हो सकती है। जब प्रत्ययलक्षण से यङ्लुगन्त में ङित्व धर्म नहीं आ पायेगा, तो यङ्लुगन्त ङिदन्त कैसे हो सकता है, अतः "अनुदात्तङित आत्मनेपदम" सूत्र से आत्मनेपद का विधान भी नहीं हो पाता है, तब "शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम" सूत्र से आत्मनेपदनिमित्त से रहित यङ्लुगन्त धातुओं से पर लँट् आदि लकारों के स्थान में परस्मैपद का विधान होता है।

2. धातुपाठ में यङ्लुगन्त धातुओं को "चर्करीतञ्च" गणसूत्र द्वारा परस्मैपदी धातुओं के अन्तर्गत पढ़ा गया है,

अतः इससे भी स्पष्ट होता है कि यङलुगन्तों से परस्मैपद ही होता है, आत्मनेपद नहीं।

3. "दाधर्तिदर्धर्तिदर्धर्षिबोभूतुतेतिक्ते" सूत्र से वेद में यङ्लुगन्त 'तेतिक्ते' प्रयोग में निपातन से आत्मनेपद होता है। यदि यङ्लुगन्त से आत्मनेपद का विधान सिद्ध होता, तो इस प्रयोग में निपातन से आत्मनेपद का विधान नहीं होता। इससे स्पष्ट होता है कि 'तेतिक्ते' प्रयोग के अतिरिक्त अन्यत्र यङ्लुगन्त से आत्मनेपद का विधान नहीं होता है।

उपर्युक्त तीनों कारणों से स्पष्ट हो जाता है कि यङ्लुगन्त से परस्मैपद का ही विधान किया जाता है, अतः कहा गया है कि– "शेषात् कर्त्तरि परस्मैपदम" इति परस्मैपदम।

पञ्चम शंका– परस्मैपद के विधान के बाद कौन सा विकरण किया जाये?

समाधान– यङ्लुगन्त का "चर्करीतञ्च" गणसूत्र द्वारा अदादिगण में पाठ स्वीकार किया गया है, अतः "कर्तरि शप्" सूत्र से 'शप' होने पर "अदिप्रभृतिभ्यः शपः" सूत्र से 'शप्' का 'लुक्' विकरण हो जाता है। जैसा वृत्तिकार ने भी कहा है– "चर्करीतञ्च" इत्यादौ पाठाच्छपो (पाठात् शपः) लुक्।

सन्दर्भ

1. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (1/3/1)
2. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (८/२/६६)
3. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (१/३/२)
4. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (१/३/६)
5. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (६/१/११०)
6. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (६/१/८४)
7. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (६/१/१०५)
8. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (१/३/७८)
9. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (६/४/७७)
10. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (१/१/५१)
11. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (७/३/८४)
12. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (१/१/४)
13. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (६/४/८७)
14. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (६/१/६)
15. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (१/१/६१)
16. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (१/१/६२)
17. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (३/१/३२)
18. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (१/३/१२)
19. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (७/४/६५)
20. पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रपाठ– (२/४/७२)